SAMVAD E-JOURNAL
ISSN : 2583-8334
(International Peer-Reviewed Refereed Journal)
Volume 3, Issue-1, Special Issue-January: 2025
Published by Rangmati Publication http://www.rangmatipublication.com/

# 79. कृषक समाज तथा ग्रामीण लोकगीत

सुतरिया कैलासबहन करशनभाई, (पीएच. डी. शोधार्थी)

अन्नदाता वर्ग अपनी मेहनत से एक उधमी के रुप में भारत को आगे बढ़ाने में हंमेशा एक मेरुदंड साबित हुआ है। वैसे ही भारत की आत्मा तो गाँवों में ही बसती आई हैं। यह मेहनतकश समाज अपनी महत्वाकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ तथा अवसाद को विभिन्न ग्रामीण लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करता रहा हैं।

**लोकगीतों में ऐतिहासिकता व आचेनता की झलकः**

"लोकगीत न तो नया होता है और न ही पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान हैं जिसकी जडें भूतकाल से जमीन में गहरी धसी हुई है, परंन्तु जिस में निरंतर नई-नई डालियाँ, पल्लव ओर, फल उगते रहते हैं।" ऐसा 'मोहनदास झा' ने माना है। वे अपनी पुस्क 'मिथिला लोक परंपरा में लोकगीत' में राल्फ का उल्लेख करते है। लोकगीत हमारे जीवन के मौखिक इतिहास के समान होते है, जो हमारे भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्य का संचित कर के रखते है।

जिस तरह से 'संस्कृति' भी परिवर्तनशील होती है। लेकीन लोकगीत संस्कृति के सात मे चलकर आगे बढते हैं। जिस तरह से आज़ादी के शरुआती दशकों तक कृषक वर्ग प्राकृतिक दशाओं पर काफी हद तक निर्भर था। जिसे लोकगीतों के माध्यम से भी पुस्तुत किया गया है –

'गरजो है !
गरजो गरजि सुनावउ हो..... देवा !
बरसौ जाए के खेतवा बरसि जुडवावउं हो ॥'

उपर्युक्त लोकगीत में कृषक समाज अपने देवता को यानि 'मेध' को बरसन के लिए प्रार्थना करता है। आज भी वर्तमान समय में भी जब 'मेघ' बरसते नहीं है तब कृषक समाज बडे-बडे 'यज्ञों' का आयोजन करता है।

कृषक समाज और लोकगीतों के पारस्परिक संबंध को अगर वैज्ञानिक द्रष्टिकोण से देखा जाए तो दो प्रकार देखने को मिलते है। (१) प्राकृतिक दशाएँ व कृषक समाज। (२) सामाजिक समस्याएँ व कृषक समाज। कृषक समुदाय का प्रकृति से हंमेशा धनिष्ठ संबंध ही रहा है। आज़ादी के पश्चात भारतीय वैज्ञानिकों के अथाग प्रयास से 'हरित' व 'श्वेत' क्रांति आई है।

प्रायः महिलाए जब धान शेपने तथा निर्वाही करने खेत में जाती हैं, तो वह अपनी व्यथा या पारिवारिक जीवन की कहुता या प्रेम को लोकगीत के माध्यम से प्रस्तुत करती है। जिसे 'रोपनी' व 'सोहनी' या 'कहनी गीत, निखाही गीत, रोपनी गीत' कहते है।

**रोपनी गीतः**

"रिमझिम बरसत पनिया।
भरी जहि हैं कोठिला ये धनिया,
आवा चली धान रोपे धनिया।"

सावन महीने में जब स्त्रियाँ भीम-भीमकर धान की रोपाई करती थी तब ऐसे लोकगीत गाया करती थी। रिमझिम फुहारों में धान रोपने का अपना एक विशेष आनंद होता है। आज लोकगीत तो है, पर उसे पहले की तरह खेतों में मुनमुनानेवाला नहीं है क्योंकि माज मशीनरीयों के माध्यम से धान रोपे जाते है।

"सावन के महिनवा के कदवा रे कदवाकदवा।"

**निरावही गीतः**

खेतो मे जब धान की रोपनी हो जाती थी, उसी के बाद धान के आस-पास उग रहें खर-पतवारों को साफ करना होता है। किसान उन्ही खर-पतवारों को दूर करने के लिए अथाग परिश्रम करता है। उसी परिश्रम से हुई थकान को दूर करने के लिए ओर कार्य को आसान करने के लिए कृषक 'निरवाही लोकगीत' गाता है। जैस –

"पतरी सिकियन का एक रे बढनिया,
ले झुकवन बहारैं वे अगनवा.....।"

'निरवाही लोकगीत' में कभी कभी लंम्बी कथाएँ भी होती थी। इसलिए उसे 'लोकगाथा' के रुप मे भी जाना जाता है। जिस में सीता की अग्नि-परीक्षा, सतीता का उल्लेख तथा सौतिया डाह आदि प्रसंग इन गीतों में वर्णित किए जाते थे।

"जौने दिन मांगिन मा डारिन सेंदुरवा।"

**कहनी गीतः**

फसल पक जाने के बाद तीन-चार महीने के अथाग परिश्रम के बाद फसल की कहनी की जाती है। आँखों में सुनहरे सपने लिए, किसान अपनी थकान मिटाने के लिए कहनी गीत गाता है।

"खेतन में लागी कहनियां हो राम।
माथ क झूलर झलाझल झलके॥"
खनके कलइया कंगनवा हो राम।
मिलि जुली के सखियां लाही बंधवाओ।"

भारतीय समाज में कृषक का अपना एक अलम ही वर्चस्व रहा है। जिस से देखते ऐसा माना गया है कि कृषक के जीवन में अथाग परिश्रम होता है जिससे मभराकर आज की नवयुवतीयाँ अपने पिता से कहती है कि मेरी शादी किसी हल चलानेवाले से मत करना, क्योंकि वह थका-हारा आयेगा और नौं-दस रोटियां खाने को मांगेगा उपर से अपनी थकान की भड़ाश भी मुझ पर उतारेगा।

**बिरहा लोकगीतः**

बिरहा लोकगीत में पति-पत्नी के बिच की इरियों का वर्णन किया गया है। जब पत्नी 'झूलनी' लाने की जिद करती है तब पति उसे समझाने का प्रयास करता है –

"भुसवा बैंची झुलनी लायदा बालम।
भुसवा बिकाइहैं बैल का खाइहैं।
बैलव बेंची झुलनी लायदा वालमा।"

इस गीत के माध्यम से पति-पत्नी के बिच के संवाद का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। जो एक गहने के लिए अपने पत्नी अपने पति से बैल, खेत, अनाज सबकुछ बेचने के लिए कहती है। एक समय था, जब लोग हल-बैल से खेती करते थे। उस समय घर में अधिक बैल होना समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। जैसे –

"बिनु बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिनु मेहरारु, घर करे, चौदह लाख लवार।"

**कृषि में श्रमगीतः**

श्रमगीत एकल एवं सामूहिक दोनों ही प्रकार से गए जाते है – जैसे – जान्तसाथ चरखा व दोहना गीत एकल है, जबकि रोपनी निरौनी, ओसाई, बेलहरी, बुआई इत्यादि गीत सामूहिक रुप से गाए जाते है।

"आलस नींद किसाने नासै, चोरे नासे खांसी।
अंखिया लीबर बेसवै नासै, बाबै नासे दासी।"

प्रस्तुत गीत में कृषक समुदाय को सावधान करते हुए कहाँ गया है कि आलसपन किसान को गर्त में ठीक उसी प्रकार ले जाती है, जेसे किसी चोर की चोरी करते समय खाँसी। कीचड भरी आँखे वेश्या को गर्त में ले जाती है और दासी साधू के नाश का कारण बनती है।

आज पूँजीवादी समाज में कृषि का भी व्यवसायीकरण हो रहा है। आज ट्रेक्टर, धान कटाने की मशीने थ्रेशर, रोटावेपर, ध्युवेल आदि यंत्रो ने कृषि को एक नयी दिशा दी है। आज का किसान वर्षा के भरोसे हीं नहीं बैठा नरहता, उसे अनेक संयत्र सुलभ हैं। आज आधुनिक युग में लोकगीत समाप्त नही हुए है। लोकगीतों ने भी अपनी जगह बदल ली है। लोकगीत आज मौखिक हस्तांतरण की विषयवस्तु न रहकर आधुनिक दूर-संचार के माध्यमों में अपनी पैठ बना चूके है। आज भी कृषक घर बैठे ही इन लोकगीतों को टीवी चैनलों पर तथा यू-टयूब पर देखता-सुनता रहता है। आज भी अनेको लोकगीत गानेवालोने इन माध्यमो से अपनी अलग पहचान बनाई है। आज भी लोकगीतों का वर्चस्व हमे देखने को मिलता है।

**संदर्भसूचीः**

(१) 'मिथिल सांस्कृति परंपरा में लोक गीत' – महोनदास झा

(२) 'अवध संस्कृति विश्वकोष' – सूर्य प्रसाद दिक्षित

(३) 'अवधी लोकगीत विरासत' – डॉ. विद्या बिंदु सिंह